THE TIMES OF INDIA

Date: 09-10-26

What Students Want

Good schools & sound education are every child's right. Govts can't plead budgetary constraints to deny them

TOI Editorial

France is western Europe's land of strikes and protests, but its current autumn of discontent – over 250,000 school students out on the streets in a single day – is unusual, the resultant violence and police crackdown, unfortunate. French schoolkids are agitating because they feel let down. They say schools are poorly maintained, and short-staffed, while classrooms are crowded. Classic symptoms of underfunding. Data confirms this – the French school system has fewer teachers than it did in 2008, but 250,000 more students, thanks to a fertility boom in 2010. The French mood has touched Belgium and Italy also. But with govts across Europe committed to belt-tightening right now, finding budgetary room to fix this won't be easy.

Regardless, a fix for broken school systems must be found, not only in Europe but everywhere. We know education is a ticket out of poverty. It broadens horizons and prepares the workforce of the future. Yet, for years now, it's been neglected. Unesco in 2017 reported that 617mn children and adolescents weren't proficient in either reading or maths. The latest Pisa – Programme for International Student Assessment – findings aren't encouraging either. In OECD, of which France is a part, science scores dipped by 7 points, on average, between 2015 and 2025. Maths scores dropped 22 points, and reading performance 28 points. Digital distractions are a major cause, but absence of good schools makes things worse.

Weakness of India's school system is also obvious. A Niti Aayog report in May said 35% of class 5 students in low-fee private schools can't read a class 2 textbook. This, although poor parents choose those private schools in preference to govt schools. Many teachers aren't proficient in their own subjects. Only 5% of schools, countrywide, offer classes 1-12 under one roof. Then there's the very large number of teacher vacancies – Bihar alone has over 2L vacancies. And as student protests in some parts of the country showed in Aug, "schools" may be run out of cattle sheds, or worse.

France or India, this is obviously not the way to produce 21st-century manpower. Greater investment in school education is necessary. Belt-tightening can happen elsewhere – wasteful subsidies and unconditional cash transfers, for example.

दैनिक भास्कर

Date: 09-10-26

चुनाव आयोग में जनता के भरोसे की बहाली जरूरी

संपादकीय

संविधान निर्माताओं ने बहु-सदस्यीय चुनाव आयोग का प्रावधान तो किया था, लेकिन पद से हटाने से केवल मुख्य चुनाव आयुक्त (सीईसी) को सुरक्षित किया, अन्य आयुक्तों को नहीं। 1989 तक सीईसी अकेले रहे, लेकिन मतदान की आयु घटने से वोटर्स की अचानक बढ़ी संख्या के मद्देनजर दो अन्य आयुक्तों की नियुक्ति हुई, जिसे एक साल में ही नई सरकार ने निरस्त कर दिया। टीएन शेषन को कमजोर करने के लिए नरसिंह राव सरकार ने 1993 चुनाव आयोग संशोधन कानून लाकर त्रि-सदस्यीय आयोग को फिर बहाल किया। इसके सेक्शन 10 (2) और (3) आयोग द्वारा सर्वसम्मति या बहुमत से लिए फैसले को ही मान्य करार देते हैं। 2023 में सीईसी की नियुक्ति पर अनूप बरनवाल केस में संविधान पीठ के सर्वसम्मत फैसले को पलटते हुए सरकार उसी साल नया कानून लाई, जिसने कार्यपालिका को ताकतवर बना दिया। आज आरोप यह है कि दो आयुक्तों की राय अहम मुद्दों पर भी नहीं ली गई। विरोधाभास यह है कि ये आयुक्त चुनाव-संबंधी या प्रशासनिक फैसलों के लिए तो सीईसी के समतुल्य हैं, लेकिन इन्हें जब चाहें सीईसी की अनुशंसा पर राष्ट्रपति हटा सकते हैं। जबकि जजों की तरह सीईसी का रिमूवल भी दुरूह है। चुनाव आयोग की गरिमा और जन विश्वास की बहाली के लिए पहले इस संरचनात्मक दोष को खत्म करना होगा।

Date: 09-10-26

अपने किए की जिम्मेदारी स्वीकारना भी धर्म का रूप है

पवन के. वर्मा, (पूर्व राज्यसभा सांसद व राजनयिक)

धर्म क्या है? 'धर्म' शब्द की व्युत्पत्ति 'धृ' धातु से हुई है, जिसका अर्थ है- धारण करना और संभालकर रखना। आम तौर पर धर्म का अनुवाद कर्तव्य, सदाचार, नैतिकता, कानून या उस नैतिक-व्यवस्था के रूप में किया जाता है, जो समाज को संभाले रखती है। लेकिन इनमें से कोई भी शब्द धर्म के व्यापक अर्थ को व्यक्त नहीं करता। हिंदू-दृष्टि में धर्म अस्तित्व की नैतिक जटिलताओं के बीच रास्ता खोजने का तरीका है।

धर्म आचरण के लिए एक स्पष्ट नैतिक ढांचा अवश्य प्रदान करता है, लेकिन यह बाइबिल के 'टेन कमांडमेंट्स' की तरह कोई कठोर नियमावली नहीं है। मानवीय विवेक और व्यवहार ने धर्म को परिस्थितियों के अनुरूप कई कारकों से प्रभावित होने की गुंजाइश दी है।

इनमें देश-धर्म यानी अलग-अलग क्षेत्रों में प्रचलित आचरण, आश्रम-धर्म यानी जीवन की अवस्था के अनुसार कर्तव्य, कुल-धर्म यानी परिवार के प्रति दायित्व, जाति-धर्म यानी जातिगत निष्ठा, स्वभाव-धर्म यानी व्यक्ति की प्रकृति, स्वधर्म यानी अंतरात्मा के विवेक से किया गया चुनाव और आपद्धर्म यानी संकट के समय अपनाया जाने वाला आचरण शामिल हैं।

धर्म हमसे कहता है कि किसी पर फैसला सुनाने से पहले संदर्भ, मंशा, परिस्थितियों और परिणामों को परखो। लेकिन यही परिष्कृत-जटिलता लोगों को अपने दोषों को सही ठहराने के लिए धर्म का इस्तेमाल करने की गुंजाइश भी देती है।

कोई गलत काम करने पर शक्तिशाली लोगों की जानी-पहचानी प्रतिक्रिया याद कीजिए। वे कहते हैं- परिस्थितियों ने मुझे विवश कर दिया, राजनीतिक दबाव था, सुरक्षा से जुड़े सवाल थे, यह फैसला व्यापक जनहित में लिया गया था, जिम्मेदार कोई और था, मंशा गलत नहीं थी, आदि-आदि।

इस तरह तो हर गलत काम के लिए एक बहाना बनाया जा सकता है। अगर हर उल्लंघन के साथ कोई-न-कोई स्पष्टीकरण दिया जाता रहे, तो धीरे-धीरे स्पष्टीकरण ही दोषमुक्ति का आधार बन सकता है। हिंदू महाकाव्य ऐसी परिस्थितियों से भरे पड़े हैं, जहां देखने में धर्मसम्मत रास्ता किसी दूसरी नैतिक जिम्मेदारी से टकराता है।

सत्य और करुणा आमने-सामने आ सकते हैं; निष्ठा और न्याय में टकराव हो सकता है; परिवार के प्रति कर्तव्य और समाज के प्रति दायित्व एक-दूसरे के विरोध में खड़े हो सकते हैं; और व्यक्तिगत सदाचार का टकराव किसी सामूहिक उद्देश्य से हो सकता है। खासकर महाभारत तो नैतिकता की नियम-पुस्तिका कम और नैतिक दुविधाओं की विशाल प्रयोगशाला अधिक है।

इसीलिए हिंदू मानस दुनिया को संतों और पापियों के दो खानों में बांटने से हिचकता है। दुर्योधन निस्संदेह गंभीर अधर्म के लिए जिम्मेदार है, फिर भी महाकाव्य में उसकी मृत्यु के समय स्वर्ग से उस पर फूल बरसते हैं। रावण ऐसे कृत्य करता है, जिनका नैतिक रूप से बचाव नहीं किया जा सकता, फिर भी रामायण उसे एक विद्वान और महान शिवभक्त के रूप में भी याद करती है।

आप कह सकते हैं कि यह सिद्धांत कि किसी एक निर्दोष व्यक्ति को सजा मिलने की तुलना में कई दोषियों का बच निकलना बेहतर है, मानवीय है। लेकिन अगर व्यवस्था इतनी जटिल हो जाए कि किसी के दोष को साबित करना लगभग असंभव हो तो कोई नेक इरादा भी बुरे नतीजे दे सकता है। दुर्भाग्य से आज स्थिति यह

हो गई है कि जिसके पास जितनी अधिक ताकत होती है, उसके पास अपनी भूलों को सही ठहराने के लिए उतने ही अधिक बहाने भी मौजूद होते हैं।

हमें समझना होगा कि धर्म भले ही संदर्भ पर निर्भर हो, लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि उसके कोई परिणाम नहीं होते। इसी तरह, कानून और नैतिकता एक ही चीज नहीं हैं। कोई अपराध कानूनी तौर पर साबित करना मुश्किल हो सकता है, फिर भी नैतिक रूप से उसका बचाव नहीं किया जा सकता। एक परिपक्व समाज को इन दोनों अंतर को समझना चाहिए।

वास्तव में धर्मसम्मत नैतिकता यह सवाल पूछती है कि मेरे आचरण ने व्यापक नैतिक व्यवस्था को संभाला है या उसे नुकसान पहुंचाया है। धर्म की कसौटी यह नहीं हो सकती कि हम अपने किए को सही ठहराने के लिए कितने चतुर तर्क दे सकते हैं। कसौटी यह होनी चाहिए कि क्या हम अब भी अपने किए की जिम्मेदारी स्वीकार करने के लिए तैयार हैं?

धर्मसम्मत नैतिकता पूछती है कि मेरे आचरण ने नैतिक व्यवस्था को संभाला है या उसे नुकसान पहुंचाया है? धर्म की कसौटी यह नहीं है कि हम अपने किए को सही ठहराने के लिए कितने तर्क दे सकते हैं। कसौटी यह है कि क्या हम अपने किए की जिम्मेदारी स्वीकारते हैं?

दैनिक जागरण

Date: 09-10-26

जीएसटी परिषद के फैसले

संपादकीय



वस्तु एवं सेवा कर यानी जीएसटी परिषद की बैठक में जो फैसले लिए गए, वे समय की मांग थे। इस परिषद का सबसे उल्लेखनीय फैसला इस विभाग के अधिकारियों से गिरफ्तारी के अधिकार को खत्म करने का है। यह फैसला इसलिए उचित है, क्योंकि इसके पहले की वैट व्यवस्था में भी टैक्स अधिकारियों को यह अधिकार प्राप्त नहीं था।

इस फैसले से कारोबार जगत को राहत मिलेगी, क्योंकि इस अधिकार के चलते सही तरीके से कारोबार करने वाले

व्यापारियों में भी अनावश्यक डर का माहौल बना रहता था। गिरफ्तारी का अधिकार खत्म होने से जीएसटी विभाग का ध्यान टैक्स की वसूली, खातों की जांच और जुर्माने पर ही अधिक रहेगा।

यह भी उचित फैसला है कि यदि फर्जी बिलिंग या टैक्स चोरी का कोई मामला सामने आता है तो उसका निपटारा सामान्य धोखाधड़ी के रूप में किया जाएगा। जीएसटी परिषद ने कुछ अन्य फैसले भी लिए हैं, जैसे 10 दिनों में रिफंड की मंजूरी और 17 दिनों में उसका भुगतान। अब रिटर्न में किसी तरह की गड़बड़ी के चलते कारोबारियों को कारण बताओ नोटिस से राहत मिलेगी और दस हजार से कम की टैक्स डिमांड पर कारण बताओ नोटिस नहीं आएगा। इसके अतिरिक्त छोटे ई कामर्स आपरेटरों को अलग-अलग राज्यों में कारोबार के लिए रजिस्ट्रेशन नहीं कराना होगा। छोटे कारोबारियों को अब 30 दिनों के अंदर पेनाल्टी देने पर छूट भी मिलेगी।

जीएसटी परिषद को अपने फैसलों के सकारात्मक परिणामों पर तो नजर रखनी ही चाहिए। इसी के साथ उसे यह भी देखना होगा कि इस विभाग में व्याप्त भ्रष्टाचार पर लगाम लगे। इसकी अनदेखी नहीं की जा सकती कि नियम-कानूनों में किसी तरह के उल्लंघन का हवाला देकर टैक्स अधिकारी कारोबारियों को तंग करते हैं और उनसे अवैध वसूली करते हैं। कोई भी टैक्स व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए, जो किसी को भी बेवजह तंग न कर सके। इससे ही उद्योग-व्यापार फलेंगे-फूलेंगे और ऐसा होना वक्त की एक बड़ी मांग है।

ध्यान रहे कि देश के साथ विदेश के भी कारोबारी टैक्स संबंधी नियमों को सरल और सुगम बनाने की मांग करते ही रहते हैं। यह मांग पूरी होनी चाहिए, क्योंकि इससे कारोबार जगत में भरोसा बढ़ता है और इसके नतीजे में उसे गति मिलती है। जैसे जीएसटी विभाग से यह अपेक्षित है कि वह कारोबार को तेजी के साथ फलने-फूलने वाला माहौल बनाए, वैसे ही कारोबारियों के लिए भी यह जरूरी है कि वे नियम-कानूनों के पालन को लेकर प्रतिबद्ध रहें। टैक्स चोरी के मामले थमने ही चाहिए। जीएसटी के नियमों में लगातार सुधार किए जाने के बाद अब इस शिकायत के लिए गुंजाइश नहीं रह जाती कि व्यवस्था जटिल है। समय और तकनीक के साथ कदमताल मिलाना कारोबारियों की भी जिम्मेदारी है।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 09-10-26

अबाध संपर्क

संपादकीय



एकीकृत परिवहन एवं लॉजिस्टिक्स प्राधिकरण (आईटीएलए) के गठन को केंद्रीय मंत्रिमंडल की मंजूरी इस बात की स्वीकारोक्ति है कि देश के परिवहन बुनियादी ढांचे की प्रभावी योजना अलग-अलग विभागों में बांटकर नहीं बनाई जा सकती। सड़क, रेलवे, बंदरगाह, विमानन, अंतर्देशीय जलमार्ग और शहरी परिवहन एक-दूसरे पर आर्थिक रूप से निर्भर हैं।

इसके बावजूद निवेश संबंधी फैसले अभी भी संबंधित मंत्रालयों और एजेंसियों के स्तर पर लिए जाते हैं और अक्सर व्यापक परिवहन नेटवर्क पर उनके प्रभाव को ध्यान में नहीं रखा जाता। आईटीएलए का उद्देश्य इसी कमी को दूर करना है। यह 10 वर्ष से अधिक की अवधि को ध्यान में रखते हुए राष्ट्रीय परिवहन मास्टर प्लान तैयार करेगा, परिवहन मंत्रालयों की क्षेत्रवार और वार्षिक योजनाओं का आकलन करेगा, 500 करोड़ रुपये या उससे अधिक लागत वाली केंद्रीय बुनियादी ढांचा परियोजनाओं का तकनीकी मूल्यांकन करेगा, उनके क्रियान्वयन की निगरानी करेगा और परियोजना पूरी होने के बाद प्रभाव का आकलन करेगा।

साथ ही यह माल एवं सेवा कर (जीएसटी) ई-वे बिल, फास्टैग, वाहन और परिवहन से जुड़े अन्य आंकड़ों जैसे स्रोतों से प्राप्त सूचनाओं के आधार पर राष्ट्रीय परिवहन डेटा रिपॉजिटरी भी बनाएगा।

यह विचार सही है। परिवहन नीति का उद्देश्य अलग-अलग परिवहन साधनों में ज्यादा से ज्यादा निवेश करना नहीं बल्कि लोगों और सामान की आवाजाही में लगने वाली लागत और समय को न्यूनतम करना होना चाहिए। एक नया राजमार्ग उपयोगी हो सकता है लेकिन उसका आर्थिक लाभ इस बात पर निर्भर कर सकता है कि उससे रेल संपर्क, बंदरगाह या लॉजिस्टिक्स हब जुड़ा है या नहीं।

इसलिए एकीकृत नियोजन से पूंजी का बेहतर आवंटन हो सकता है, दोहराव वाले निवेश को कम किया जा सकता है और लॉजिस्टिक्स की लागत घटाई जा सकती है। देश में समन्वय के लिए संस्थाएं तो अक्सर बनाई गई हैं लेकिन उन्हें समन्वय करने के लिए पर्याप्त अधिकार नहीं दिए गए।

कई शहरों में प्रस्तावित एकीकृत महानगरीय परिवहन प्राधिकरण (यूएमटीए) काफी हद तक सलाहकारी संस्थाएं बनकर रह गए हैं क्योंकि परिवहन बुनियादी ढांचे, संचालन और वित्त पर नियंत्रण रखने वाली एजेंसियां स्वतंत्र रूप से काम करती रही हैं। दिल्ली में यूएमटीए स्थापित करने के नए प्रयास इस बात की याद दिलाते हैं कि एक ही महानगरीय क्षेत्र के भीतर भी एकीकरण कितना कठिन है।

खासकर जब जिम्मेदारियां और वित्तीय संसाधन अलग-अलग एजेंसियों में बंटे हों। यही सबक आईटीएलए पर भी लागू होता है। उद्योग एवं आंतरिक व्यापार संवर्धन विभाग के तहत एक विशेष प्रयोजन इकाई के रूप में गठित किए जाने के कारण किसी परिवहन मंत्रालय के अधीन होने के बजाय आईटीएलए में विभिन्न परिवहन साधनों के बीच अधिक तटस्थ दृष्टिकोण अपनाने की क्षमता है।

लेकिन इसकी परियोजना मूल्यांकन और निगरानी संबंधी भूमिकाओं का परियोजनाओं के चयन, निवेश की प्राथमिकताओं और उनके क्रियान्वयन पर वास्तविक प्रभाव होना चाहिए। अन्यथा यह प्राधिकरण भी परामर्श की एक और परत बनकर रह जाने का जोखिम उठाएगा। पीएम गति शक्ति के साथ इसके काम में दोहराव होने का भी खतरा है। प्रस्तावित डेटा रिपॉजिटरी विशेष रूप से उपयोगी साबित हो सकती है।

भारत के पास परिवहन से संबंधित डेटा बड़ी मात्रा में है लेकिन यह विभिन्न मंत्रालयों, ऑपरेटरों और डिजिटल प्लेटफॉर्मों में बिखरा हुआ है। इन्हें एक साथ लाने से माल की आवाजाही, यातायात जाम, वाहनों के उपयोग और यात्रियों की मांग को कहीं बेहतर ढंग से समझना संभव हो सकता है। लेकिन डेटा का एकीकरण केवल एक और डेटाबेस बना देने से नहीं होगा।

इसके लिए साझा मानक, विभिन्न प्रणालियों के बीच पारस्परिक अनुकूलता और उचित सुरक्षा उपायों की आवश्यकता होगी। शहरी स्तर पर नेशनल कॉमन मोबिलिटी कार्ड (एनसीएमसी) का अनुभव इस मामले में उपयोगी चेतावनी देता है। 2019 में 'वन नेशन, वन कार्ड' के वादे के साथ शुरू की गई इस योजना का उद्देश्य मेट्रो, बस और अन्य परिवहन प्रणालियों में निर्बाध भुगतान की सुविधा देना था। लेकिन विभिन्न प्रणालियों के बीच इसकी पारस्परिक अनुकूलता धीरे-धीरे ही बढ़ी है। सरकार के मुताबिक जुलाई 2026 तक एनसीएमसी 13 मेट्रो परियोजनाओं और 11 बस परिवहन निगमों में काम कर रहा था। यह दिखाता है कि वास्तविक एकीकरण कितना कठिन हो सकता है।

इसलिए आईटीएलए का मूल्यांकन उसके मास्टर प्लान की गुणवत्ता के आधार पर नहीं बल्कि इस आधार पर किया जाना चाहिए कि क्या वह योजना वास्तविक निवेश और परियोजनाओं के क्रियान्वयन में बदलाव ला पाती है।

जनसत्ता

Date: 09-10-26

कसौटी पर सवाल

संपादकीय

एक लोकतांत्रिक प्रणाली में अगर कोई नेता या जनप्रतिनिधि अपनी पार्टी को छोड़ कर दूसरे दल में शामिल होता है, तो इसे उसके अधिकार के तौर पर देखा जाता है। मगर विडंबना है कि अब यह चलन इस स्तर तक पहुंच चुका है कि महज सत्ता का लाभ पाने के उद्देश्य से किसी राजनीतिक पार्टी के कुछ नेता बाकायदा समूह बना कर अपनी पार्टी छोड़ देते हैं और या तो खुद को असली पार्टी घोषित कर देते हैं या फिर किसी अन्य दल में शामिल हो जाते हैं। इसे भले ही एक सामान्य राजनीतिक चलन मान लिया गया हो, लेकिन सच यह है कि देश की राजनीति में बढ़ती इस प्रवृत्ति की वजह से नेताओं की निष्ठा और सिद्धांतों को लेकर उनकी प्रतिबद्धता पर तीखे सवाल उठने लगे हैं। गौरतलब है कि महाराष्ट्र में शिवसेना एक मजबूत राजनीतिक ताकत रही है। मगर जब एकनाथ शिंदे ने अपने साथ विधायकों को लेकर शिवसेना छोड़ने और भाजपा के साथ मिल कर सरकार बनाने का फैसला किया, उसके बाद यह पार्टी दो हिस्सों में बंट गई। उसके बाद चुनाव आयोग के सामने यह मामला सामने आया था कि मूल शिवसेना का चुनाव चिह्न किसे आबंटित किया जाए। इस क्रम में कई दौर की सुनवाई के बाद चुनाव आयोग ने उद्धव ठाकरे गुट की दलीलों को दरकिनार करके शिवसेना के शिंदे गुट को धनुष-बाण चुनाव चिह्न आवंटित कर दिया था।

अब उसी मसले पर एक याचिका की सुनवाई के दौरान सुप्रीम कोर्ट ने यह सख्त टिप्पणी की है कि क्या उन लोगों को पार्टी का चुनाव चिह्न दिया जा सकता है, जिन्होंने दलबदल जैसा संवैधानिक पाप किया है। कोर्ट ने यह भी कहा कि क्या सिर्फ विधायकों की संख्या को अकेली कसौटी मानना उचित है, जबकि उनके खिलाफ अयोग्यता से संबंधित मामला अदालत में चल रहा हो। यह विचित्र है कि अगर संविधान में लोकतांत्रिक मूल्यों को बचाने के उद्देश्य से कोई व्यवस्था की गई है, तो उसकी तकनीकी जटिलताओं का लाभ उठा कर कुछ नेता कई बार अपने पक्ष को लेकर ऐसा रवैया अख्तियार कर लेते हैं, जिसमें उन्हें जनप्रतिनिधि चुनने वाली जनता ठगी रह जाती है। ज्यादातर मौकों पर दलबदल की यह प्रवृत्ति न केवल प्रकारांतर से जनता के साथ धोखा होती है, बल्कि सैद्धांतिक राजनीति के बुनियादी तकाजों को ताक पर भी रखती है। इस प्रवृत्ति पर काबू पाने के लिए दलबदल कानून बना, लेकिन उससे इस पर ज्यादा फर्क नहीं पड़ा। सवाल है कि चुने गए जनप्रतिनिधियों के बीच सुविधा की सियासत की बढ़ती प्रवृत्ति अगर इसी कदर आम होती गई, तो ऐसे में लोकतंत्र का कैसा स्वरूप बचेगा। चुनाव प्रक्रिया के वक्त लगभग सभी मतदाता कई उम्मीदवारों में से किसी एक को वोट देने के निर्णय तक पहुंचने से पहले उसके वादों और व्यक्तित्व को समझने से लेकर उस पर भरोसा करने तक काफी जद्दोजहद से गुजरते हैं। मतदाता के सामने अपनी पसंद के उम्मीदवार की पार्टी की राजनीति और सिद्धांत की एक स्पष्ट तस्वीर होती है। मगर चुने जाने के बाद बिना

किसी मजबूत वजह के दल बदलने वाले जनप्रतिनिधियों के लिए नैतिकता और सिद्धांतों का सवाल शायद कोई मायने नहीं रखता है। संविधान में लोकतांत्रिक मूल्यों के हित में की गई व्यवस्थाओं का बेजा फायदा उठा कर अपनी सुविधा और लाभ की राजनीति को प्राथमिकता देने और बिना किसी हिचक के दल बदलने वाले नेताओं के संदर्भ में सुप्रीम कोर्ट ने उचित ही 'संवैधानिक पाप' कहा है। मगर जरूरत इस बात की है कि सख्त टिप्पणियों से आगे जाकर बिना किसी सैद्धांतिक आधार के दल बदलने की प्रवृत्ति को रोकने के लिए ठोस पहल हो ।

Live हिन्दुस्तान .com

Date: 09-10-26

डाटा सेंटर बनाते समय पानी बिजली का भी ध्यान रखें

राहुल मथान, (साइबर विशेषज्ञ)

इस साल जुलाई में ठाणे (मुंबई) के सैकड़ों निवासियों ने बालकुम स्थित 53 एकड़ के उस भूखंड पर मानव शृंखला बनाई, जिसे 'हाइपरस्केल डाटा सेंटर' के लिए चयनित किया गया था। निवासी उस शोर और गर्मी के खिलाफ अपना विरोध जता रहे थे, जो इस डाटा सेंटर के बनने से पैदा होने वाली थी। वे शहर में पहले से ही पानी की किल्लत झेल रहे थे, इसलिए वे इस डाटा सेंटर में पानी के भारी इस्तेमाल के खिलाफ भी मुखर थे।

प्रदर्शनकारियों की आशंकाएं नई नहीं हैं। पिछले तीन साल से ये दावे किए जा रहे हैं कि 'चैटजीपीटी' से पूछे गए हर सवाल में आधा लीटर पानी और 'गूगल सर्च' के मुकाबले 10 गुना ज्यादा बिजली लगती है। हालांकि, इन दावों की सच्चाई पर सवाल उठाए गए हैं। पिछले साल अगस्त में गूगल ने बताया था कि 'जेमिनी' को दिए गए एक औसत 'टेक्स्ट प्रॉम्प्ट' में 0.24 वाट-प्रतिघंटा बिजली और 0.26 मिलीलीटर (लगभग पांच बूंद) पानी खर्च होता है, लेकिन गूगल ने इस बात को नजरअंदाज कर दिया कि रीजनिंग मॉडल सौ गुना और वीडियो जेनरेटर पांच सेकंड की क्लिप के लिए उस आंकड़े से लगभग 4,000 गुना ज्यादा बिजली खर्च करते हैं। यहां जिस बात का बचाव करना बहुत मुश्किल है, वह है सर्वर को ठंडा रखने के लिए जरूरी पंखों की लगातार गूंज से होने वाला ध्वनि प्रदूषण।

'कौंसिल ऑन एनर्जी, एनवायर्नमेंट ऐंड वॉटर' के अनुसार, भारत में डाटा सेंटर में पानी की खपत हमारी कुल जरूरत का 0.02 प्रतिशत से 0.03 प्रतिशत तक ही है। इसका मतलब यह नहीं है कि ठाणे में विरोध करने वालों की चिंता निराधार है। एआई से पर्यावरण पर पड़ने वाले असर को मापने के लिए यह देखना जरूरी है कि डाटा सेंटर कहां बना है, उसे चलाने के लिए ऊर्जा के स्रोत क्या हैं और उसका असर किन लोगों पर पड़ेगा? आंध्र प्रदेश के विशाखापत्तनम में गूगल का 15 अरब डॉलर का एआई हब ऐसी जगह पर बन रहा है, जहां का

भूजल स्तर पहले ही बहुत नीचे है। वहीं, तथ्य यह भी है कि देश की आधी से ज्यादा डाटा सेंटर क्षमता वाली मुंबई में इस गर्मी में पानी की राशनिंग करनी पड़ी थी।

देश के इलेक्ट्रॉनिक्स एवं सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय ने पिछले साल जो 'नेशनल डाटा सेंटर पॉलिसी' का मसौदा जारी किया था, उसमें प्रोत्साहन (इंसेंटिव्स) को ली गई बिजली और उसके सर्वर द्वारा असल में इस्तेमाल की गई बिजली, यानी 'पावर-यूसेज इफेक्टिवनेस' के अनुपात से जोड़ा गया है। हालांकि, ऐसा लगता है कि इसमें पानी, जगह के चयन और शोर-शराबे से जुड़ी समस्याओं पर ध्यान नहीं दिया गया है। चूंकि 'पावर-यूसेज इफेक्टिवनेस' हासिल करने का सबसे सस्ता तरीका पानी के वाष्पीकरण से ठंडा करना (इवैपोरेटिव कूलिंग) है। इसलिए हो सकता है कि बिजली बचत के चक्कर में हमें पानी की भारी कमी का सामना करना पड़े।

एआई के क्षेत्र में सफल होने के लिए हमें उसी तरीके को अपनाना चाहिए, जिस पर हमारा आईटी उद्योग आधारित है, लेकिन यह हमारी जरूरत का सिर्फ आधा हिस्सा है। बाकी आधा हिस्सा बालकुम के निवासियों की चिंताओं को दूर करने से जुड़ा है। माइक्रोसॉफ्ट का हैदराबाद डाटा सेंटर एक 'क्लोज्ड-लूप सिस्टम' पर चलता है, जो कूलिंग के लिए पानी का इस्तेमाल नहीं करता है। हमें इन विधियों को देश के दूसरे हिस्से में भी लागू करना चाहिए। हमारी राष्ट्रीय नीति में इन चिंताओं का सीधे तौर पर समाधान होना चाहिए। हर डाटा सेंटर को पानी-बिजली के इस्तेमाल की क्षमता (पीयूई) की रिपोर्ट देना जरूरी होना चाहिए। हर नए स्थल का परीक्षण होना चाहिए, जिसमें उसके बेसिन में पानी की उपलब्धता को आंका जाए। उन घरों को भी ध्यान में रखा जाए, जो उसी पानी पर निर्भर हैं।

एआई द्वारा इस्तेमाल किए जाने वाले पानी की मात्रा के बारे में कहानियां बनी रहेंगी, क्योंकि यह मिथक असलियत से कहीं ज्यादा असरदार है, लेकिन बालकुम के निवासियों की तरह लोग असल में सिर्फ यह भरोसा चाहते हैं कि जो डाटा सेंटर बनाई जा रहा है, वह उन लोगों पर कोई असंभव बोझ न डाले, जिनको उसके साथ रहना है। ये ऐसी चिंताएं हैं, जिनका समाधान हमारी डाटा सेंटर पॉलिसी आसानी से कर सकती है।